भारत का सर्वोच्च न्यायालय

बिहार राज्य बनाम रामबालक सिंह व अन्य

17 जनवरी, 1966

बेंचः [पी० वी० गजेन्द्रगडकर (सी०जे०), जे० सी० शाह, एस० एम० सीकरी, बी० रामास्वामी और पी० सत्यनारायण राजू, जे० जे०]

प्रतिवादी जिसे नियम 30 के तहत हिरासत में लेने का आदेश दिया गया था, उसने भारत के रक्षा नियम 1962, के तहत उच्च न्यायालय में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी को अंतरिम जमानत पर रिहा करने का आदेश पारित किया।

उक्त आदेश के विरूद्ध इस न्यायालय में अपीलकर्ता अपील योजित करके यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि यद्यपि कि उच्च न्यायालय को बंदी प्रत्यक्षीकरण की कार्यवाही में अंतरिम जमानत प्रदान करने का क्षेत्राधिकार है , परन्तु ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय को क्षेत्राधिकार नहीं है जहां पर किसी व्यक्ति को भारत के रक्षा नियम 30 के तहत हिरासत में लिया गया हो। जिन नियमों एवं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नियम 30 के तहत शक्तियाँ प्राप्त हैं, वह भारतीय संविधान के अधिनियम 226 के पूर्णतया भिन्न है तथा न्यायालय इसकी अनदेखी नहीं कर सकता। भारत के रक्षा नियम 30 इसी उद्देश्य से बनाया गया है कि किसी व्यक्ति द्वारा भारतीय सुरक्षा, सिविल डिफेन्स, पब्लिक सेफ्टी के विरूद्ध उसके पूर्वाग्रह से ग्रसित क्रियाकलापों को समाप्त करना है जो धारा 30 द्वारा निर्दिष्ट गंभीर सार्वजनिक मामलों में से एक या दूसरे को प्रभावित करने की संभावना रखते हैं और इसलिए यह अभिनिर्धारित करना अतार्किक होगा कि न्यायालय के उन आधारों के गुष, दोष को बारे में कोई निर्णय लेने से पहले ही, जिनके आधार पर आदेश को चुनौती दी गई है, न्यायालय के लिए जमानत का अंतरिम आदेश पारित करने के लिए खुला होगा। इसके अलावा ऐसी कार्यवाही में पारित जमानत का कोई भी आदेश अंतरिम नहीं होगा, बल्कि अंतिम होगा और यह भी इस प्रकार के मामलों को बंदी प्रत्यक्षीकरण की कार्यवाही से अलग करेगा।

यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद 226 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका की सुनवाई करते हुए, जिसमें नियम 30 के तहत गिरफ्तारी की आदेश को चुनौती दो गई हो, उच्च न्यायालय के पास जमानत प्रदान करने का क्षेत्राधिकार है परन्तु, इस क्षेत्राधिकारिता का उपयोग करते समय विशेष परिस्थितियों का ध्यान रखना होगा जो इस प्रक्रिया के लिए विशेष है तथा जो गिरफ्तारी के आदेश को नियम 30 के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सुसंगत तरीके से पारित किया गया है। (351 डी)

1964 (1965) के विशेष संदर्भ संख्या 1 एस०सी०आर० 413, उड़ीसा राज्य बनाम बी० मदन गोपाल रूंगटा व अन्य, (1952) एस०सी०आर० 28, संदर्भित किया।

यदि कुछ शर्तों या आधारों के प्रमाणित हो जाने पर उच्च न्यायालय के लिए यह खुला हुआ है कि वह नियम 30 के तहत पारित गिरफ्तारी के आदेश को दरकिनार करते हुए गिरफ्तार व्यक्ति को रिहा करने का आदेश पारित कर दे, तब यह नहीं कहा जा सकता है कि उचित केश में उच्च न्यायालय के पास यह क्षेत्राधिकार नहीं है कि मामले के अंतिम निष्तारण तक गिरफ्तार व्यक्ति को वह अंतरिम अनुतोष न प्रदान कर सकें। (348 सी)

यह भी नहीं कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का अंतरिम आदेश पारित करने का क्षेत्राधिकार उन परिस्थितियों में समाप्त हो जायेगा जब उच्च न्यायालय नियम 30 के तहत पारित गिरफ्तारी के आदेश पर बंदी प्रत्यक्षीकरण की सुनवाई की जा रही हो। (348 जी)

यह केवल तभी है जब उच्च न्यायालय संतुष्ट हो कि प्रथम दृष्टया गिरफ्तारी का आदेश दृष्टिगत रूप से विधि सम्मत न हो, तब जमानत का आदेश पारित किया जायेगा। उच्च न्यायालय का अंतरिम आदेश पारित करने का क्षेत्राधिकार आदेश की प्रकृति पर निर्भर नहीं करेगा, बल्कि इस अधिकारिता पर निर्भर करेगा कोई पक्ष मुख्य अनुतोष के साथ सहायक अनुतोष के रूप में प्राप्त करने का हकदार है, यदि वह पक्ष अपने केश में अंतिम रूप से सफल होने पर प्राप्त करता। (249 ई)

किसी निरूद्ध व्यक्ति को अनुतोष प्रदान करने का उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार अत्यधिक संकीर्ण एवं सीमित है और यदि न्यायालय का यह दृष्टिकोण है कि रिट याचिका में प्रथम दृष्टया यह कथन किया गया है जो यह उजागर करता है कि गिरफ्तारी के आदेश में कुछ गंभीर त्रुटियां हैं तब रिहाई का आदेश उचित है। ज्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण व तर्कसंगत प्रक्रिया यही होगी कि इस बात को अंगीकृत किया जाए कि रिट याचिकाओं का निष्तारण मामले की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए एवं बिना किसी विलम्ब के किया जाए। (350 ए-बी)

यदि उच्च न्यायालय द्वारा जमानत का आदेश किसी वाद बिन्दू के पूर्ण निष्तारण से पहले ही एवं मात्र प्रथम दृष्टया अभिमत के आधार पर कर दिया जाए, तब उस आदेश को चुनौती इस आधार पर दिया जा सकता है कि वह आदेश बिना किसी अधिकारिता के पारित किया गया है। ऐसे मामलों में न्यायालय को बिना अधिकारिता के क्षेत्राधिकार के तहत आदेश पारित करने से बचना चाहिए। (350 स)

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः आपराधिक अपील सं०-1965 का 200।

दिनांकित निर्णय और आदेश से विशेष अनुमति द्वारा अपील 1965 के आपराधिक डब्ल्यू०जे०सी०सं० 126 में पटना उच्च न्यायालय का 24 नवम्बर, 1965।

प्रस्तुत प्रकरण का निर्णय न्यायालय की तरफ से माननीय गजेन्द्रगडकर (सी०जे०) द्वारा सुनाया गया। विशेष अनुमति द्वारा यह अपील पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरूद्ध योजित है जिसमें यह आदेशित किया गया था कि बंदी रामबालक सिंह को 500/- रुपये जमा करने एवं 250/- रुपये के दो प्रतिभू उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार के संतुष्टि पर जमानत पर रिहा किया गया। आदेश में आगे यह उल्लिखित किया गया कि बंदी को ओर से पेश हुए श्री गिरीश नन्दन सिन्हा ने अदालत में एक अण्डर टेकिंग दिया था कि अदालत में कार्यवाही के लंबित रहने एव जमानत पर रहने के दौरान याचिकाकर्ता किसी भी पूर्वाग्रह पूर्ण गतिविधि में शामिल नहीं होगा या कोई पूर्वाग्रहपूर्ण कार्य नहीं करेगा।बिहार के महाधिवक्ता श्री लाल नारायण सिन्हा ने अपीलकर्ता, बिहार राज्य को ओर से आग्रह किया कि अपील के तहत आदेश बिना किसी क्षेत्राधिकार के है और यह कानून का महत्वपूर्ण प्रश्न है कि क्या अनुच्छेद 226 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका को स्वीकार करते समय जिसमें भारत के रक्षा नियम 30 के तहत किसी व्यक्ति को बंदी बनाया गया है, क्या उच्च न्यायालय के पास यह क्षेत्राधिकार है कि वह बंदी प्रत्यक्षीकरण की सुनवाई करते हुए निरूद्ध व्यक्ति को जमानत पर रिहा कर सके।

विद्वान महाधिवक्ता ने यह प्रारम्भ में ही कहा है कि अपीलकर्ता बिहार राज्य उच्च न्यायालय के जमानत के आदेश को निरस्त के लिए उत्सुक नहीं है ,जो अपील के अधीन है परन्तु, विद्वान महाधिवक्ता ने यह आग्रह किया है कि अपीलकर्ता चाहता है कि यह कानून का बिन्दू तय किया जाए। क्योंकि यह आवश्यक है कि इस मामले में सही कानूनी स्थिति संदेह में न रहे। इसलिए अपीलार्थी राम बालक सिंह की ओर से प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका से सम्बन्धित तथ्यों एवं अपील के तहत आदेश को औचित्यता या तर्कसंगत्ता पर विचार नहीं करेंगे। यह सच है कि जैसा कि विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है कि शायद की ऐसा कोई मामले सामने आता है कि माननीय उच्च न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका को अंगीकृत करते हुए, अनुच्छेद 226 में दिये गये अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी बंदी को जिसे नियम 30 के तहत गिरफ्तार किया गया हो, उसे जमानत पर रिहा करे।

विद्वान महाधिवक्ता ने हमारा ध्यान हाल ही में इस न्यायालय द्वारा विशेष संदर्भ संख्या 1/1964 में की गई टिप्पणियों की तरफ आकृष्ट कराया जो वर्तमान अपील से निपटने के उद्देश्य हेतु प्रासंगिक है। उस मामले में उत्तर प्रदेश की विधान सभा में अपनी अवमानना के लिए केशव सिंह जो इसके सदस्यों में से एक नहीं थे, को जेल भेज दिया था। केशव सिंह ने तब इलाहाबाद उच्च न्यायालय में लखनऊ बेंच के समक्ष अपने मौलिक अधिकारों को हनन के आधार पर संविधान के अनुच्छेद 226 व दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 451 को चुनौती दिया था। साथ ही उन्होंने अंतरित जमानत दिये जाने की प्रार्थन भी की थी। उनकी याचिका पर विचार करने वाले विद्वान न्यायाधीशों ने उन्हें जमानत पर स्वीकार कर लिया और विशेष संदर्भ में इस न्यायालय से समक्ष निर्णय के लिए जो बिन्दू सामने आये उनमें से एक था कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा केशव सिंह को अंतरित जमानत दिये जाने का क्षेत्राधिकार प्राप्त था कि नही।

श्री सीरवई, जो यू.पी. विधानसभा की ओर से पेश हुए थे, ने दृढ़ता से तर्क दिया था कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश केशव सिंह को जमानत के लिए स्वीकार करना आधिकार क्षेत्र के बिना था, और उनके तर्क के समर्थन में, उन्होंने अंग्रेजी प्रथा पर भरोसा किया था जो यह मान्यता प्रतीत होता है कि हाउस ऑफ कामन्स द्वारा अपना अवमानना के आधार पर पारित प्रतिबद्धता के आदेशो के खिलाफ शुरू किए गए बंदी प्रत्यक्षीकरण के संबंध में, अदालतों द्वारा जमानत नहीं दी जाती है। हालाकि, इस तर्क को इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था, क्योंकि इस न्यायालय न यह विचार लिया था कि यदि अनुच्छेद 226 अपराध के आदश से निपटने के लिए न्यायालय को न्यायशास्त्र का अधिकार प्रदान करता है। भले ही प्रतिबद्धता का आदेश सहन द्वारा दिया हो, लेकिन यह कैसे कहा जा सकता है कि अदालत को ऐसी कार्यवाही में अंतरिम आदेश देने का कोई आधिकार क्षेत्र नहीं है। उड़ीसा राज्य बनाम में इस न्यायालय के पहल के निर्णय का भी सदर्भ दिया गया था। मदन गोपाल रूंगटटा और अन्य (1) जहां यह निर्णय दिया गया था कि अंतरिम राहत केवल मुख्य राहत की सहायता और सहायक के रूम में दी जा सकती है, जो किसी मुकदमे या कार्यवाही में अपने अधिकारों के अंतिम निर्धारक राष्ट्र पर पक्ष को उपलब्ध हो सकती है। यह स्पष्ट है कि यह दृष्टिकोण इस सर्वमान्य सिद्धान्त पर आगेज बढ़ा है कि यदि किसी न्यायालय को किसी कानून द्वारा अधिकारिता प्रदान की जाती है, तो न्यायपालिका के प्रदान होने के तात्पर्य ऐसे सभी कार्यों को करने या ऐसे साधनों को नियोजित करने की शक्ति प्रदान करना है, जो इसके निष्पादन के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इस प्रकार श्री सरवई द्वारा उठाये गए तर्क को खारिज करने के बाद, इस न्यायालय ने यह सावधानी बरतते हुए कहा कि यह जांच करन के लिए चिंतित नहीं है कि क्या केशव सिंह को जमानत पर स्वीकार करने का आदेश उचित और उचित था या नहीं, इस अदालत को तब केवल इस बात पर विचार

करने के लिए कहा गया था कि क्या उक्त आदेश न्यायशास्त्र क बिना था, और इस बिंदू पर इस अदालत द्वारा व्यक्त राय यह थी कि अंतरित जमानत का आदेश पारित करते समय, उच्च न्यायालय को अपन अधिकार क्षेत्र से अधिक नहीं कहा जा सकता है।

विद्वान महाधिवक्ता सही पर विवाद नहीं करते हैं। इस टिप्पणियों का महत्व। हालांकि, उनका तर्क है कि इस सिद्वान्त को उन मामलो में लागू नहीं किया जा सकता है जहां एक बंदी को नियमों की धारा 30 के तहत हिरासत में लिया जाता है। भारत रक्षा अधि० औरि नियमों के अधिनियमन में अंतर्निहित नीति और आर. 30 के ततहत अधिकृत निरोध द्वारा प्राप्त किया जाने वाला उद्देश्य स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि सर्वोच्च महत्व के अन्य बैध विचार हैं जो आर. 30 के तहत किए गए निरोद को अलग करते हैं और जो द्वारा या उसकी ओस से शुरू की गई कार्यवाही के चरित्र को बदल देते हैं। अनुच्छेद के तहत हिरासत में (226) यह स्वीकार किया जाता है कि आर 30 के तहत पारित निरोध के आदेशों के सम्बन्ध में भी, यह उच्च न्यायालय के लिए सक्षम होगा कि वह हिरासत के लिए गए व्यक्ति की रिहाई का आदेश दे। यदि उच्च न्यायालय संतुष्ट हो कि विवादित आदेश दुर्भाग्य तरीके से पारित किया गया है। इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि निरोध के आदेश को रद्द किया जा सकता है। यदि उच्च न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि इसके बावजूद, यह अमान्य है, उदाहरण क लिए जब उच्च न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि आदेश के चेहरा दिखाता है कि इसे पारित करने के लिए सशक्त प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया है। लेकिन तर्क यह है कि इस सवाल पर विचार करते हुए कि क्या उच्च न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण में किसी बंदी को अंतरिम जमानत दे सकता है, अनुच्छेद के तहत उसकी ओर से कार्यवाही शुरू की गई। 226, न्यायालय इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता है कि हिरासत का उद्देश्य भारत की रक्षा और नागरिक सुरक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना, विदेशी शक्तियों के साथ भारक के संबंध भारत के किसी भी हिस्से में शांति पूर्ण स्थितियों को बनाए रखना, सैन्य अभियानों का कुशल संचालन या सैन्य अभियानों के रख रखाव के लिए किया गया है। किसी नागिरक के खिलाफ गिरफ्तारी का आदेश देने का उद्देश्य उसकी उन पूर्वग्रहपूर्ण गतिविधियों को समाप्त करना है जो नियम 30 द्वारा निर्दिष्ट गंभीर सार्वजनिक महत्व के मामलों में से एक या दूसरे को प्रभावित करने की संभावना रखते हैं और इसलिए, यह अभिनिर्धारित करना अतार्किक होगा कि न्यायालय के उन आधारों के गुण-दोष के बारे में कोई निर्णय लेन से पहले ही, जिनके आधार पर निरोध के आदेश को चुनौती दी गई है, न्यायालय के लिए जमानत का अंतरिम आदेश पारित करने के लिए खुला होगा, और यह आग्रह किया जाता है कि, नियमों के नियम 30 के तहत पारित निरोध के आदेशों के सम्बन्ध में बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही को अलग करता है। हम इस तर्क से प्रभावित नहीं है। यदि कुछ शर्तों या आधारों के प्रमाण पर यह उच्च न्यायालय के लिए अलग रखने के लिए खुला है। नियमों के धारा 30 के तहत किए गए निरोध का आदेश, और निरोध की रिहाई का निर्देश, हम यह नहीं देखते हैं कि यह अभिनिर्धारित करना हैसे संभव होगा कि एक उचित मामले में, उच्च न्यायालय को निरोध को राहत देने वाला अंतरिम आदेश देने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है जो उच्च न्यायालय कार्यवाही के अंत में उसे देने का हकदार होगा। जिस सामान्य सिद्वान्त पर इस न्यायालय की टिप्पणियां विशेष संदर्भ में आधारित थी, वह हिरासत में लिए गए व्यक्ति की ओर से शुरू की गई बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही पर उतना ही लागू होगा। किसी भी अन्य बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही के बारे में नियमों की धारा 30 के तहत यदि न्यायालय के पास कार्यवाही के अंत में हिरासत में लिए जाने गए व्यक्ति को मुख्य राहत देने का अधिकार क्षेत्र है, तो सैद्धान्तिक रूप से यह समझना आसान नहीं है कि न्यायालय उसकी रिट याचिका के अंतिम निपटारे तक हिरासत में लिए गए व्यक्ति को अंतरिम राहत क्यों नहीं दे सकता है। बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही में जो अंतरिम राहत दी जा सकती है, वह निस्संदेह मुख्य राहत की सहायता और सहायक होनी चाहिए। यह आग्रह नहीं किया जा सकता है कि किसी बंदी को जमानत पर रिहा करना उस मुख्य रहात की सहायता या सहायक नहीं है जिसके लिए रिट याचिका में उसकी ओर से दावा किया गया है। यह सच है कि इस सवाल से निपटने में कि क्या बंदी को अंतरिम जमानत दी जानी चाहिए, न्यायालय स्वाभाविक रूप से उन विशेष उद्देश्यों को ध्यान में रखेगा जो नियम 30 के तहत पारित निरोध के आदेशों द्वारा प्राप्त किए जाने का इरादा रखते है, लेकि हम अधिकार क्षेत्र के सवाल से निपट रहे हैं और किसी भी आदेश की औचित्य या तर्क संगत से चिंतित नहीं है। इस प्रश्न को अधिकारिता के एक खाली प्रश्न के रूप में देखते हुए, हम यह मानने के लिए अनिच्छुक हैं कि उच्च न्यायालय की अधिकारिता अनुच्छेद के तहत अंतरित सहायक आदेश पारित करने के लिए है। यह कहा जा सकता है कि संविधान की धारा 226 को आवश्यक निहितार्थ से हटा लिया गया है। जब उच्च न्यायालय नियमों की धारा 30 के तहत पारित निरोध के आदेशों के सम्बन्ध में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिकाओं पर विचार कर रहा है।

तथापि, विद्वान महाधिवक्ता द्वारा यह आग्रह किया जाता है कि वर्तमान कार्यवाहियों में जमानत का आदेश और वास्तव में कोई भी आदेश ऐसी कार्यवाही में पारित जमानत अंतरिम नहीं होगी, लेकिन अंतिम में यह बताय गया है कि इस चरित्र के मामलों को बंदी प्रत्यक्षीकरण याचकाओं के अन्य

मामलों से अलग करता है। तर्क यह है कि यदि कोई व्यक्ति दोषी ठहराया जाता है और वह अनुच्छे 226 के तहत वैधता को चुनौती देना चाहता है तो अंतरिम जमानत इस अर्थ में अंतरिम होगी कि वह कार्यवाही ऐसा न करने पर संबंदित व्यक्ति को जेल लौटाना होगा और भाग जाना होगा। उस पर लगाई गई सजा को केशव के मामलें पर बोलते हुए सिंह द्वारा यह आग्रह किया गया था कि यदि केशव सिंह द्वारा दायर रिट याचिका असफल रहा होता तो उसे जेल लौटने के लिए मजबूर होना पड़ता और यू०पी० विधानमंडल द्वारा उस पर सुनाई गई सजा को समाप्त करना पड़ता। तथापि नियम 30 द्वारा प्रभावी निरोध के सम्बन्ध के मामले में एक अलग पायदान पर खड़े हो, उनके द्वारा कोई अवधि निर्धारित नहीं की गई है। निरोध के आदेश में समय-समय पर नवीनीकरण किया जा सकता है तथा संबंधित प्रासंगित नियमों द्वारा अधिकृत, और बनाने का उद्देश्य आदेश के पूर्वाग्रहपूर्ण कृत्यों के आयोग को रोकने के लिए है। परिस्थितियों की तुलना बंदी के जेल वापसी से नहीं की जा सकता जिसे दोषी ठहराया गया था और जिस कार्यवाही में अंतरिम जमानत दी गई थी, जिसके द्वारा उन्होंने अपनी दोषसिद्धि की वैधता को चुनौती दी। यह तर्क भी उचित नहीं है कि जब उच्च न्यायालय किसी बंदी को अंतिम सुनवाई तक जमानत पर रिहा कर देता है तो उसकी बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का निपटारा, उच्च न्यायालय नहीं करेगा। संदेह सभी प्रासंगिक तथ्यों को ध्यान में रखता है और यह केवल तभी होता है जब उच्च न्यायालय संतुष्ट होता है कि प्रथम दृष्टया कुछ है। नजरबंद के क्रम में स्पष्ट रूप से अवैध बात है कि जमानत का आदेश पारित किया जाएगा। पारित करने के लिए उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र अंतरिम आदेस का प्रकृति पर निर्भर करता है, लेकिन सहायक पक्ष को अंतरिम राहत देने के अपने अधिकार पर मुख्य राहत के लिए जिसके लिए पार्टी हकदार होगी, यदि वह अपनी याचिकाओं में सफल होती है। इसलिए इसे केवल एक प्रस्ताव के रूप में माना जाता है। कानून, विद्वान अधिवक्ता जनरल के इस तर्क को स्वीकार करने का कोई कारण नहीं देखते हैं कि इस न्यायालय द्वारा विशेष संदर्भ में प्रतिपादित सिद्धान्त बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिकाओं पर लागू नही होता है, नियम के तहत दायर किया गया। अनुच्छेद 226 नियमों की धारा 30 के तहत पारित निरोध के आदेशों के सम्बन्ध में इस प्रकार के विद्वानों द्वारा आग्रह किये गए मुख्य तर्क को स्वीकार करने के बाद महाधिवक्ता, को इस तर्क पर जोर देना चाहिए कि जमानत के माध्यम से अंतरिम राहत देने में उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की पुष्टि करने को कोई संकोच नही है। जिन्हें नियमों की धारा 30 के तहत हिरासत में लिया गया है, कुछ अपरिहार्य विचार है जो कार्यवाही के लिए प्रासंगिक हैं। यह चरित्र और जो अनिवार्य रूप से बंदी को जमानत देने वाले अंतरिम आदेश पारित करने के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को सीमित करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिन तथ्यों पर हिरासत में लिए गए प्राधिकारी की उप-सन्तोषजनक संतुष्टि आधारित है, वे न्यायसंगत नहीं है और इसलिए, यह उच्च न्यायालय के लिए पूछताछ के लिए खुला नहीं है।

क्या निरोध का विवादित आदेश तथ्यों के आधार पर उचित है या नहीं । इस तरह की कार्यवाही में बंदी को राहत देने के लिए उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र बहुत संकीर्ण और बहुत सीमित है। ऐसा होने पर, यदि उच्च न्यायालय का विचार है कि प्रथम दृष्टया, रिट याचिका में लगाए गए आरोप निरोध के आदेश में एक गंभीर दोष का खुलासा सकते हैं जो बंदी की रिहाई को उचित ठहरायेंगे, तो बुद्धिमान और अधिक विवेकपूर्ण और उचित तरीका अपनाया जाएगा कि रिट याचिका की सुनवाई में तेजी लाई जाए और बिना किसी देरी के गुण-दोण पर विचार किया जाए। उस मामले को लीजिए जहां रिहासत के आदेश के संबंध में दुर्भावनापूर्ण आरोप लगाए गए हैं। जब तक राज्य द्वारा विवरणी दाखिल नहीं की जाती है, तब तक न्यायालय के लिए कथित दुर्भावना के बारे में किसी भी निष्कर्ष पर बहुंचना. यहां तक कि प्रथम दृष्टया भी, असंभव नहीं तो मुश्किल है। जिस तरह यह संभावना नहीं कि कि उच्च न्यायालय ऐसे मामलों में आते हैं जहां निरोध के आदेश दुर्भावनापूर्ण तरीके से पारित किए जाते हैं, इसबात की भी संभावना नहीं है कि दुर्भावनापूर्ण आरोपों के हल्के-फुल्के या बिना औचित्य के बनाया जाता है और इसलिए न्यायिक दृष्टिकोण आवश्यक रूप से यह मानता है कि दुर्भावनापूर्ण के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है, यहा तक कि प्रथम दृष्टया भी, जब तक कि राज्य को अपना विवरण दाखिल करने और उक्त आरोपों को सम्बन्ध में अफना मामला बताने का मौका नहीं दिया जाता है और यह इस तथ्य पर जोर देता है कि हिरासत के आदेश की बैधता को चुनौती देने के सम्बन्ध में भी कि यह दुर्भवनापूर्ण तरीके से पारित किया गया है। प्रथम दृष्टया अस्थायी निष्कर्ष पर अंतरित आदेश देना सुरक्षित या उचित होगा कि क्या सच है। दुर्भावना अन्य दुर्बलता के बारे में भी समान रूप से सच है कि जिस पर नजरबंदी के आदेश को बंदी द्वारा चुनौती दी जा सकती है। यही कारण है कि नियमों की धारा 30 के तहत हिरासत में लिए गए बंदियों को राहत देने के लिए न्यायालय की अधिकारिता पर सीमा अनिवार्य रूप से अंतरिम जमानत देने की न्यायालय की शक्ति पर एक अनुरूप सीमा लागू करती है। इस चरित्र की रिट याचिकाओं से निपटने में, न्यायालय को स्वाभाविक रूप से उस उद्देश्य को ध्यान मे रखना होगा जिसका उद्देश्य निरोध के आदेशों द्वारा पूरा किया जाना है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक बंदी को बिना मुकदमे के हिरासत में लिया जाता है और इसलिए, अदालतें अनिवार्य रूप से उन आधारों पर नागरिक की व्यक्तिगण स्वतंत्रता की रक्षा करे के लिए उत्सुक होगी जो न्यायसंगत है और उनके

न्यायशास्त्र की सीमाओं के भीतर है। लेकिन कानून द्वारा अनुमत सीमाओं के भीतर व्यक्ति स्वतंत्रता के वादे को बनाए रखने में, उस उद्देश्य की अनदेखी करना बुद्धिमानी नहीं होगी। जिसे पूरा कनरे के लिए निरेध के आदेशों का इरादा है। किसी पक्ष को जमनत देने के मूर्खतापूर्ण निर्णय से ऐसे परिणाम हो सकते हैं जो बड़े पैमान पर समुदाय के हितों के लिए प्रतिकूल है और यह एक ऐसा कारक है जिसे उच्च न्यायलय द्वारा ऐसा कार्यवाही मे किसी बंदी को जमानत देने के निर्णय लेने से पहले विधिवत तौला जाना चाहिए। यह स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र है कि हमें ऐसे मामले नहीं मिले है जहां नियमों की धारा 30 के तहत हिरासत के आदेशों के खिलाफ निर्देशित बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही में जमानत दी गई है। और हमें आशंका है कि ऐसी कार्यवाही में जमानत के आदेश पारित कनरे के लिए अदालतों की अनिच्छा स्पष्ट रूप से इस तथ्य पर आधारित है कि वे पूरी तरह से संचेत है। कठिनाईयां कानूनी और सवैधानिक और अन्य इस तरह की जोखिम लेने में अदालतों द्वारा हमेशा प्रयास किये जाते हैं कि शीघ्रता से निपटना और वास्तविक व्यवहार में ऐसे मामले का सामना करना बहुत मुश्किल होगा, जिसमें जिस आधार पर निरोध का आदेस दिया गया है, उसकी पूरी जांच और मुकदमा बंदी द्वारा चुनौती दी जाती है, यह उजित रुप से संभव होगा या न्यायालय प्रथम दृष्टया इस निष्कर्ष पर पहुचने व जमानत देने से चूक गई। कार्यवाही का प्रारम्भिक चरण में इसके द्वारा यदि न्यायालय द्वारा पूर्ण विचारण के बिना जमानत का आदेश दिया जाता है तो न्यायालय द्वारा गठित केवल प्रथम दृष्टया राय पर शामिल मुद्दे उच्च न्यायालय के उक्त आदेस् को इस चुनौती के लिए खुला होगा कि अधिकारिता के अस्तित्व के बीच के अंतर को ध्यान में रखना और इसका उचित व्यायाम ऐसे क्षेत्रों में अधिकारिता के अनुचित प्रयोग करना। विद्वान महाधिवक्ता वर्तमान अपील में, हमारा निष्कर्ण यह अनुच्छेद के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिकाओं के निपटन में है। संविधान के नियम 30 के तहत निरोध के आदेश पारित किये गए नियमों को चुनौती दी जाती है, उच्च न्यायालय के पास जमानत देने का अधिकार क्षेत्र है, लेकिन उक्त अधिकार क्षेत्र के प्रयोग अनिवार्य रूप से सीमित है। उन विचारों द्वारा जो ऐसी कार्यवाही के लिए विशेष और जो उस बस्तु के लिए प्रासंगिक है जिसका उपयोग किया जाना है। उचित रूप से और वैध रूप से पारित गिरफ्तारी आदेशों को नियमों में कहा गया है।

हम पहले ही संकेत दे चुके है कि महाधिवक्ता द्वारा निष्पक्ष रुप से यह कहा गया है कि यदि अपीलार्थी इस न्यायालय में वर्तमान अपील के तहत आदेश की शुद्धता, औचित्य या तर्कसंगत्ता को चुनौती देने के उद्देश्य से नहीं की है, बल्कि उक्त आदेश द्वारा उठाए गए अधिकार क्षेत्र के महत्वपूर्ण प्रश्न पर इस न्यायालय से निर्णय लेने के उद्देश्य से की है। इसलिए हम इस सवाल पर विचार कनरे का प्रस्ताव नहीं करते हैं कि क्या अपील के तहत आदेश उचित या वैध है। परिणाम यह है कि अपील विफल हो जाती है और खारिज कर दी जाती है।

इस मामले का परिणाम यह है कि यह अपील निप्रयोज्य एवं निरस्त की जाती है।

अनुवादक: विराट मणि त्रिपाठी, जे०एम०